P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-4* ISSUE-9* May- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

कालिदास के काव्य में जीवन आदर्श

माधवी शर्मा
प्राचार्या,
संस्कृत विभाग,
डी. बी. (पी.जी.) महाविद्यालय,
खेरली, अलवर

सारांश

कालिदास की भारतीय संस्कृति के मूल्यों के प्रति अगाध निष्ठा थी इसलिए भारतीय जीवन मूल्यों को आधार स्तम्भ बनाकर आनन्द को जीवन का आदर्श माना तथा इन्हीं आधार पर काव्य रचना की। कालिदास ने आश्रम व्यवस्था, पुरूषार्थ, ईश्वर आदि को उल्लिखित किया है। कालिदास ने शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य जीवन की परिष्कृति तथा अलंकृती दोनों माना है। कालिदास ने कुमार संभव में कहा है पार्वती की उत्पत्ति से हिमवान वैसे ही पवित्र एवं विभूषित हो गए जैसे प्रकाश की शिखा से दीपक अथवा गंगा से तीनों लोक अथवा विद्वान सुसंस्कृत वाणी से पूत अलंकृत होता है। कालिदास ने पुरूषत्व का ध्वनन रघुवंश दिलीप, रघु एवं राम आदि नायकों के चरित्रांकन में हुआ है। नारी सम्मान को भी कालिदास ने अपनी रचनाओं का आधार बनाया है।

मुख्य शब्द : काव्य कालिदास, समाज आदर्श, वर्ण आश्रम, शिक्षा दर्शन, प्रेम नारी।

प्रस्तावना

कालिदास की रचनाआपें में उपदेषात्मक शैली नहीं है अपितु प्रियतमा पत्नी का विनम्र निवेदन सा मनुहार है। कालिदास की रचनाओं में 'कान्तासम्मितयोपदेषायुजे' उच्च आदर्षों के कलात्मक प्रस्तुतिकरण से कावि (रचनाकार) हमें जीवन में इन आदर्षों को आत्मसात करने को विवष करता है। हम पात्रों के अनुरूप ही जीवन में आचरण करते हैं, जो कि मानवता के लिए प्राणरू॰ है। कालिदास की रचनाओं में सामान्य जन को संसार के कष्टों से अवगत कराने के लिए प्रेम वासना इच्छा–आकांक्षा, आशा–स्वप्न, सफलता–विफलता आदि को अभिव्यषक्ति दी है। कालिदास ने माना किइ जीवन की समग्रता है इसलिए जीवन में कहीं भी विखण्डन नहीं होना चाहिए।

कालिदास की रचनाओं में सौन्दर्य के क्षण, पराक्रमिक दृश्य एवं घटनायें एवं मानव हृदय की प्रतिप7ल परिवर्तित धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष की महित्ता पर बल दिया है। ''धमार्थ कामयोक्षाणावतारे''[1] मानव कर्मानुसार ही फल का भोग करता है इस प्रकार कालिदास ने कर्मवाद को प्रबल माना है।

[4] फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव''[2]

मनव जीवन नश्वर है, जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है। ज्ञानी जन प्रियजन की मृत्यु पर शोक नहीं करते। रानी इन्दुमती के निधन पर शोक संतप्त राजा को धैर्य का सन्देष देते हुये ऋषि वशिष्ठ कहते हैं –

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्नन्‌ु लाभवानसौ।।
अवगच्छति मूढयेचनः प्रियनाषं हृदि शल्यमर्पितम्।
स्थिरधीस्तु तदेव मन्यते कुशलद्वारतया समुध्धृतम्।।
स्वषरीरषरीरिणावपि श्रुतसंयोगविपर्ययौ यदा।
विरहः किमिवानुतापयेद्वद बाह्योर्विषयैविपश्चितम्।।
न पृथग्जनवच्छुयो वशं वशिनामुत्तम गन्तुर्महसि।
द्रुमसानुमतां कि किमन्तरं यदि वापयौ द्वितयेऽपि ते चलाः।।

जो शरीर धारण करता है उसकी मृत्यु निश्चित है। ज्ञानीजन का मानना है कि वस्तुतः जीवन एक विकार हैं इसलिए प्राणी जितने भीक्षण जीवन जीता है, श्वास लेता है, उसे उतने ही क्षणों से सन्तोष करना चाहिये। अज्ञानी जन ही प्रिय व्यक्ति की मृत्यु पर हृदय में सुलग्न बाण के निकलने पर पीडा नष्ट हो जाती है उसी प्रकार मृत्यु भी सुखद है। महाराज आप जितेन्द्रिय में शिरोमणि हैं, इसलिए आपको सामान्य जन की भांति दुःख नहीं करना चाहिए।

मानव की क्षणभंगुरता को कालिदास ने मेघदूत में बताया है –

अव्यापन्नः कुशलमबजले पृच्छति त्वा वियुक्तः।
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव।।

कालिदास ने समाज की दृष्टि से आधि भौतिकता से आध्यात्मिकता को श्रेयस्कर माना है। राजा रघु योगी बनकर मोक्ष प्राप्त करता है।

अजिनदझउमृतं कुशमेखलां
यतगिरं मृगषृंगपरिग्रहाम्।
अधिवसंस्तनुमध्वर
दीक्षितामसमभसमभासयदीश्वरः।।

कालिदास ने अपने पात्रों को सर्वगुण सम्पन्न के रूप में प्रस्तुत कर अपने सह्रदय जन पाठकों को सद्गुणों के ग्रहण करने तथा अवगुणों का परित्याग करने का उपदेश देते हैं। रघुवंश महाकाव्य में –

''श्रियमवेक्ष्य स रन्ध्रचलामभूदनलसोऽनल सोमसमुद्यतिः।

लक्ष्मी छिद्र देखते ही छोडकर अन्यत्र चली जाती है।
राजा दषरथ प्रमाद रहित होकर अग्नि और चन्द्र के समान मकने लगे। यहां राजा ना प्रमाद (आलस्य) के त्याग का उपदेश दिया है।

कालिदास ने दाम्पत्य में सगुण योग का समर्थन किया है। रत्नं समागच्छतु कान्चनेन' रत्न का स्वर्ण से समागम होना चाहिए। कालिदास ने अपनी समस्त रचनाओं में पौनः पुन्य प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। रघुवंश महाकाव्य में अज और इन्दुमती के दाम्पत्य योग के रूप में –

शषिनमुपगतेयं कौमुदी मेघमुक्तं
जलनिधिमनुरूपं जअनुकन्यावतीर्णा।
इति समगुणयोगप्रीयस्त्र पौराः,
श्रवणकटुनृपाणामेकवाक्यं विबब्रुः।।

आध्यात्मिक जीवन के परिपोष के निमित्त यज्ञ, दान और तप साधन बताते हुए यज्ञ की महत्ता का पुनः पुनः निरूपण किया है।

हविः आवर्जितम् होतः त्वया विधिवत् अग्निषु।
वृष्टिः भवति रस्यानाम्वग्रह विषोष्णिाम्।।
(2/17)

हे महात्मन्! यज्ञाग्नि में विधिवत् डाली गयी अहुतियों से वर्षा होती है, जिससे शस्यों को नवजीवन प्राप्त होता है।

कालिदास ने ऋषियों की तपोभूमि तपोवन को धर्मभूमि के रूप में वर्णित कर इनकी मानव ह्रदय को पवित्र करने वाला स्थान कहा है। अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक के प्रथम अंक में –

''पुण्यत्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे।''

अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक में तपस्वियों के नमस्यामयी तेज का वर्णन –

शमप्रधानेषु तपोधनेषु गूढं
हि दाहात्मकमस्ति तेजः।
स्पर्शनुकूला इव
सूर्यकान्तास्तदन्यते जोडीभभवाद्धमन्ति।। (217)

तपस्वी जन शान्त प्रकृति के होते हैं, तथापि उनमें तपस्या का इतना तेज होता है कि यदि कोई उनके स्वाभिमान को तिरस्कृत करता है तो ये तपस्वी उसे जलाकर उसी प्रकार भस्म कर देते हैं जैसे स्पर्श में शीतल एवं सुखद होने पीर भी, सूर्यकान्तमणि सूर्य के प्रकाष से आग उगलने लगती है।

सामाजिक जीवन के उत्थान के लिए कालिदास वर्णाश्रम धर्म का समर्थन करते हैं। वर्णो एवं आश्रम के वर्गीकरण से सामाजिक जीवन सुचारू रूप से संचालित हो सकता है। रघुवंष महाकाव्य में कालिदास ने संदेश दिया है कि ब्राह्मण अपने मौलिकव कर्त्तव्य तपस्या, ध्यान व वन्दन करते हुए गुरूकुलों में शिक्षा देते हैं तथा लौकिक एवं पारलौकिक सत्य को उद्रघटित करते हैं। क्षत्रिय धर्म को बताते हुए कहा है –

क्षतात्किल त्रायत दत्युदग्रज क्षत्रस्य
शब्दो भुवनेषु रूटः।
राज्येन किं ताद्विपरीतवृत्तेः
प्राणैरूपक्रोशमलीमसैर्वा। (2/56)

क्षत्रिय धर्म को बताते हुए अभिज्ञान शाकुन्तलम् में भी लिखा है –

तत्साधुकृतस्नध ाानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणय वः शस्त्रं न प्रहतुर्मनागसि।।

तास्वियों की श्रेष्ठ तपस्या के अंशदान की महत्ता को अभिव्यन्जित करता अभिज्ञान शाकुन्तलम् का पद्य–

यदुत्तिष्ठति वर्णम्यो नृपाणांक्षयि तत्फलम्।
तपः षड्भागमक्षय्यारणयका हि नः।।

ब्राह्मणादि वर्णों से जो धन आदि कर रूप में प्राप्त होता है, वह सब नाषवान होता है, किन्तु अरण्य में निवास कर तपस्या करने वाले तपस्वी जन कभी क्षय न होने वाला तपस्या छठा भाग देते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में ही वैष्य कर्म को बताया है कि वैश्यों के वाणिज्य व्यापार से राष्ट्र की सम्पत्ति में वृद्धि होती है और ये अपना व्यापार समुद्रों से दूसरे देशों से करते थे। कालिदास ने यह भी कहा है कि प्रत्येक वर्ण का अपने व्यवसाय पर गर्वित होना चाहिए उसका परित्याग नहीं करना चाहिए।

''सहजं किल यद्विनिन्दितं न
खलु तत्कर्म विवर्जचीयम्।''

इस प्रकार किसी भी राष्ट्र की समृद्धि के लिए समस्त वर्णों का परस्पर समन्वय तथा परस्पर एक दूसरे के कर्म सम्पादन में सहयोग आवश्यक है।

कालिदास ने आश्रम धर्म के महत्तव का प्रतिपदरन भी किया है। आश्रम धर्म की कल्पना, आदर्श एवं लक्ष्य सभी का वर्णन किया है। कुमार संभव में बटुक वेशधारी षिव के रूप में ब्रह्मचर्य का चित्रण –

अथाजिलाषाटधरः प्रकल्यभावाग्
ज्वलन्नि ब्रह्ममेन तेजसा।
विवेश कश्चिज्जटिलस्तपोवनं
शरीरबद्धः प्रथमाश्रमोयथा।। (5–30)

इसी अन्तराल एक दिन ब्रह्मचर्य के तेज से दीप्तिमान हुआ सा हिरण की चर्म को धारण कर पलाशदण्ड हाथ में लिये हुए, सुदृढ शरीर वाला एक ब्रह्मचारी उस तपोवन में प्रविष्ट हुआ।

गृहस्थाश्रम के लिए लिखा है –

सम्यग्विनीयानुमतो गृहाय।

वानप्रस्थाश्रम का तो कालिदास ने अपनी अधिकांश रचनाओं में पुनः पुनः वर्णन किया है।इसके अन्तर्गत ऋषितपससया में निमग्न रहकर, सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर जीवन दर्षन का उपदेश देते हैं।

कालिदास ने जीवन के अन्तिम सोपान सन्यास आश्रम में शरीर त्यागकर पावन एवं समग्र आध्यात्मिक जीवन में प्रवेष की श्रेयस्करता –

शैषवेऽभ्यस्तविधानां यौवने विषयैविषाणाम्।
वर्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।

कालिदास ने शिक्षा के दर्शन का भी वर्णन किया है। शिक्षाक तथा शिक्षार्थी दोनों का ही योग्य होना आवष्यक है। मालन विकाग्निामित्र में शिक्षा की कसौटी बताते हुए कहा है कि सुष्ठु शिक्षा की कसौटी है कि जेसे सोना अग्नि में डालने पर भी काला नहीं पडता वैसे ही सच्ची शिक्षा परीक्षा काल में भी क्षीण नहीं होती है।

उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेषिनः।
श्यामाय ते नं युष्मासु यः कान्चन मिवाग्निषु।। (219)

कालिदास ने अपने तीनों नाटकों अभिज्ञान शाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा मालविकाग्निमित्र में आदर्श जीवन दृष्टि को चित्रित कियो है। विक्रमोर्वेशीयम् नाटक मे कालिदास ने लक्ष्मी और सरस्वती के समागम युक्त सर्वांगीण विकास की कामना की है।

"संगतं श्रीसरस्वत्योर्भूतयोऽस्तु सदा सताम्।"

कालिदास ने अभिज्ञाान शाकुन्तलम् में –

नातिश्रमापनयनाय यथाश्रमाय
राज्यं स्वहस्त धृतदण्डमिवातपत्रम्।।

शासक का शासन करना थकान दूर करने के लिए नहीं, बल्कि थकान के लिए होता है, जैसे आतप से बचने के लिए आतपत्र को धूप से बचने के लिए अपने हाथ से स्वयं धारण करना पडता है।

कालिदास ने अपनी रचनाओं में आश्रम संस्कृति का नगरीय भौतिकता, विलासिता के प्रतिरोधस में तपस्वियों की अपरिग्रहता, आत्मनिर्भरता, निःस्पृहता का महत्त्व दर्शित किया है।

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य तभी चरितार्थ होता है जबकि शिक्षा ग्रहण करने से जीवन की परिष्कृति तथा अलंकृति दोनों होती हैं। कुमारसंभव में कहा है –

प्रभामहत्या षिखमेव दीपास्त्रिमार्गमेव
त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तथा स
पूतश्च विभूषि तष्च।। (1/28)

कालिदास ने प्रेम को एक परिष्कारिणी, ऊर्ध्वगामिनी शक्ति के रूप में निरूपित किया हैं प्रेम मानव को तभी ऊँचे, देवोपम धरातलों पर उठाता है जब वह वासना के कर्दम से मुक्त होकर स्वच्छन्दता के आकर्षक मोह को भेदकर कर्त्तव्य परायणता की दिशा में मुड जाता है।

कालिदास की रचनाओं का प्रमुख वैषिश्ट्य है कि उन्होंने नारीत्व के आदर्षों को उभारने का प्रयास किया है। कुमारसंभव में पार्वती के कौमार्ये का चित्रण चित्ताकर्षक हैं नारी रूप के वर्णन तन्मय होकर सृष्टि के सकल सौन्दर्य का मधुरतम सार उसमें सन्निकट कर, उसे सृष्टि के सृजनकर्ता विधाता की सृष्टि कौशल की अनुपम कसौटी मानता है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक में –

चित्रे निवेष्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृतानु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विमुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्या।।

ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि सृजन की शक्ति क्षमता तथा उसमें शकुन्तला के शरीर रचना पर विचार किया होगा, अतएव शकुन्तला विधाता के द्वारा चित्र फलक पर कल्पित कर उसमें बाणों का सन्चार करके पूर्ण तन्मयता से उस सौन्दर्य समूह का निर्माण किया गया हैं इसलिए यह ब्रह्मा की अनुपम स्त्रीरत्न रचना प्रतीत होती है।

कालिदास ने अपनी रचनाओं में सामाजिक सम्बन्धों, मानवीय संदेदनाओं, प्रेम, हर्ष, शोक, दुःख आदि सभी को समाविष्ट किया है। पुत्री के प्रति समाज, परिवार में एक विशिष्ट ममत्वमयी दृष्टि होती है। जब तक पुत्री पितृ गृत में रहती है तब तक उस परिवार को दीपशिखा की भांति उद्भासित करती हैं, उसमें प्रेम, हर्ष तथा आनन्द का उद्रेक करती हैं। परिवार का असीम प्यार उसके लिए उंडेल दिया जाता हैं और जब यह पुत्री परिणय सूत्रे में बंधकर पति के साथ जाने का उद्यत होती तो वह पुत्री वियोग गहन वेदनामय होता है।अभिज्ञान शाकुन्तलम् में –

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं से
स्पृष्टमुत्कण्ठया कण्ठः
स्तम्भित–वाष्पवृत्ति–कलुष–श्चिनताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं
न तनयाविश्लेष–दुःखेर्नवैः।।

आज शकुन्तला जायेगी इस कारण मेरा हृदय चिन से व्याकुल हो रहा है। गला अलनवरत होते हुए अश्रु प्रवाह से अवरूद्ध हो गया है। दृष्टि पुत्री के चले जाने की चिन्ता से निश्चेष्ट हो गयी है। तपोवन में निवास करने वाले मुझ जेसे तपस्वी की शकुन्तला के प्रति प्रेम के कारण ऐसी व्याकुलता है तो गृहस्थ जन जिनकी पुत्री जब विवाह के बाद जाती होंगी तो उन्हें पुत्री वियोग जनित दुःख कितना विह्ल करता होगा।

भारतीय सामाजिक, पारिवारिक मूल्य व मान्यताऐं कि पुत्री किसी अन्य की धरोहर है और उसके लिए योग्य पति खोजकर उसका परिणय करना, इस लोकादर्श की प्रतिष्ठा अभिज्ञान शाकुन्तलम् में दृष्टिगोचर होती है।

अर्थो हि कन्या परकीय एव
तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विषदः प्रकामं
प्रत्यार्पितन्यास इवान्तरात्मा।।

इस प्रकार कालिदास ने भारतीय लोक जीवन के आदर्शों को तूलिका से अपनी रचनाओं में समाहित किये। ये आदर्श जन–जन के द्वारा अनुकरणीय बन गये और इन आदर्शों में ही कालिदास राष्ट्रकवि के रूप में स्थापित हुए।

कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक के भरतवावय में अपने श्रेष्ठतम् आदर्शों को अभिव्यन्जित किया –

प्रवर्ततां प्रकृति हिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतमहती महीयसाम्
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुर्नमवं परिगतशक्तिरात्मभः।।

उद्देश्य

काव्य परम्परा में कालिदास की रचनाओं के काव्यगतगत वैशिष्ट्य का अवगाहन कर उनमें वर्णित मानवीय जीवन मूल्यों का अध्ययन कर उन्हें जीवन में आत्मसात कर जीवन जीने के लिए जन–जन को प्रेरित किया।

निष्कर्ष

कालिदास ने हिन्दू धर्म एवं भारतीय संस्कृति के उदात्त तत्वों तथा उच्च आदर्शों को काव्य रूपी चित्ताकर्षक प्रस्तुत किया है। इस उपदेश परक रूप में कालिदास ने काव्य के प्रमुख प्रयोजन ''कान्तासम्मितयोपदेश युजे'' को सार्थक कर दिया। कालिदास ने अपनी रचनाओं में लेखनी से भारतवर्ष के महान् उदात्त और शान्त शोभनीय रूप को मुखरित किया है। कालिदास ने देश की अपूर्व मनीषा और महान जीवन मूल्यों को अपने काव्यों और नाट्यों में रूपायित किया है। कालिदास

एकस्य तिष्ठति कवेर्गृह एव
काव्यमन्यस्य गच्छति सुह्रद्दवनानि यावत्।
न्यस्याविदग्धवदनेषु पदानि शश्वद्
कस्यापि संचरति विश्वकुतूहलीव।।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *काव्यप्रकाश–मम्मट*
2. *रघुवंश 1/20*
3. *रघुवंश 8/37–90*
4. *मेघदूत*
5. *अभिज्ञान शाकुन्तलम् 2/7*
6. *रघुवंश 2/56*
7. *अभिज्ञान शाकुन्तलम्*
8. *अभिज्ञान शाकुन्तलम् 6/9*
9. *कुमार संभव 5/30*
10. *रघुवंश 1/8*
11. *मालविकाग्निमित्र 2/9*
12. *विक्रमार्वशीयम्*
13. *अभिज्ञान शाकुन्तलम्*
14. *कुमार संभव 1/28*
15. *अभिज्ञान शाकुन्तलम्*
16. *अभिज्ञान शाकुन्तलम् (चतुर्थ अंक)*
17. *अभिज्ञान शाकुन्तलम् (चतुर्थ अंक)*
18. *अभिज्ञान शाकुन्तलम् (सप्तम अंक)*